आलोचना

त्रैमासिक

नामवर सिंह

(1926 - 2019)

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

भारतीय संस्कृति के इतिहास में स्त्रियों की दशा

डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़
सहायक आचार्य, अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)
ई–मेलः ravindrachhapara@gmail.com

भूमिका

भारत विविधताओं का देश है। यहाँ का हर क्षेत्र अनूठा है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक का विस्तृत भूगोल अपने आप में एक वृहद् ऐतिहासिक विरासत को सहेजे हुए हैं। इस ऐतिहासिक आयाम के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक फलक है, जो इसे अद्भुद बनाते है। इसी संस्कृति को संजोने में भारतीय स्त्रियों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। चाहे वह शक्ति के रूप में हो या फिर बलिदान के रूप में, वे हमेशा ही अग्रणीय रही है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

मनु का वाक्य है कि जिस कुल में स्त्रियों को सम्मान मिलता है, देवता वही रहते हैं। इसके विपरित जहां इनका अनादर होता है, समस्त कार्य असफल होते हैं।[1] मनु स्मृति में वर्णित है कि ब्रह्म ने सृष्टि निर्माण के पूर्व सर्वप्रथम अपने शरीर को अर्द्धनारीश्वर रूप में विभक्त किया था। स्त्रियों की महत्ता का गुणगान प्रायः समकालीन ब्राह्मण, बौद्ध व जैन ग्रन्थों में हुआ है। जैन धर्म संधिनी या श्रद्धाचारी का महत्त्वपूर्ण स्थान था।[2] स्त्रियों की सामाजिक महत्ता का वर्णन करते हुए एक विचारक ने उल्लेख किया है कि यूची जाति में स्त्रियों को पर्याप्त आदर मिला था। यहां तक कि प्रशासन समबन्धी जिन विषयों से उनका सम्बन्ध न था उनमें भी उनकी परामर्श ली जाती थी।[3] महाभारत के अनुशासन पर्व में विहित है कि माता अपनी महता में दस पिता से अथवा समस्त भूमण्डल में श्रेष्ठ है एवं श्रेष्ठतम गुरू भी।[4]

मनु एक श्लोक में स्त्रियों के सम्मान की बात करते है–

उपाध्यायात् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्र तु पितृणं माता गौरवणति स्त्रियते।।

अर्थात् दक्ष उपाध्यायों में एक आचार्य बड़ा है, सौ आचार्या से पिता बड़ा है और पिता से माता गौरव से हजार गुणा बड़ी है। माता का दर्जा पिता से भी ऊँचा है।[5]

---

[1] मनु, 3।56, 8
[2] श्री महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्तन्थ., 1968, पृ. 160
[3] सांस्कृतायन, आर. हिस्ट्री ऑफ सेन्ट्रल एरिया, पृ. 100
[4] महाभारत, 13।105।14–6
[5] भट्ट जनार्दन, भारतीय संस्कृति, पृ. 60

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

यही नहीं नामों में भी स्त्री नाम पहले आता है, पुरूष का पीछे। जैसे सीताराम, लक्ष्मीनारायण आदि। स्त्रियों में यथेष्ट शिक्षा का प्रचार था। वैदिक काल में अनेक स्त्रियां हुई जिन्होंने वेद के मन्त्रों की रचना की। ऐसी स्त्रियों में लोपामुद्रा, विश्वधारा, सिकता, इन्द्राणी आदि नामों का उल्लेख है। इसी तरह उपनिषदों में गार्गी, मैत्रेयी आदि स्त्रियों के नाम आते हैं। उसके बाद के युग में भी पद्मावती मीरा बाई जैसी विदुषी और शास्त्रज्ञ स्त्रियों का उल्लेख प्राचीन साहित्य में मिलता है।[6] विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में महिलाओं का गौरवपूर्ण स्थान रहा है।

एक अन्य प्रसंग में स्त्री को परिवार के प्राण (कुल लक्ष्मी) समृद्धता का प्रतीक, पति को पूर्णत्व प्रदान करने वाली, सरवा, दार्शनिक, मार्ग प्रदर्शक और इसी कारण सम्मानीय माना है। विहित है भगवान स्त्री का आदर करने वाले से प्रसन्न होते हैं। जैन संस्कृति में कन्या समाज व परिवार के लिए उस धुरी के रूप में उपयोगी मानी गई थी जिस पर गृहस्थाश्रम घूमता है।[7] बौद्ध धर्म व जैन साहित्य में भी स्त्रियों को अत्यधिक आदर प्रदान किया जाता था। संभवतः इसी कारण अधिकांश स्त्रियों द्वारा बौद्ध विहार में प्रवेश या जिनमें कतिपय विख्यात आचार्यों भी हुई। कलाकृतियों में देवियों के संदर्भ में मातृ देवी वसुन्धरा, गजलक्ष्मी, दुर्गा, षष्ठी, नाना देवी आदि का अंकन समाज में स्त्रियों की उन्नति दशा का बोध है। इतिहासकार के मतानुसार यही नाना देवी आज कुमाऊ और हिमाचल प्रदेश में नैना देवी के रूप में पूजित है।

स्त्रियों के कर्त्तव्य

मनृस्मृति में स्त्रियों के कर्त्तव्यों का विशद् उल्लेख हुआ है। मनु ने स्त्री का परम कर्त्तव्य का विशद् में पति के प्रति सत्य रहना बताया है। वर्णित है उसे धार्मिक कार्य आरम्भ करने के पूर्व पति की अनुमति लेना आवश्यक था। वह बाल्यावस्था, युवावस्था एवं वृद्धावस्था में क्रमशः पिता, पति व पुत्र की इच्छानुसार ही आचरण करें। स्त्री जीवन में कभी भी स्वतंत्र नहीं मानी गई थी।[8] स्त्री से अपेक्षित था कि वह सर्वथा प्रसन्न मुद्रा में गृह कार्यों में दक्ष, बर्तनों को स्वच्छ, शुद्ध रखने वाली, धार्मिक कार्य करने वाली, भोजन पकाने वाली एवं अल्पव्ययी हो। मद्यपान करना, दुष्ट–चरित्रों से मिलना, पति से दूर रहना, पति के बिना ही दूरस्थ यात्रा करना, दिन में सोना, अपरिचित के घर रहना उक्त छः दोष स्त्रियों का सर्वनाश कर देते है।[9]

प्रतिव्रता–धर्म का पालन करती हुई स्त्री को पति का अप्रिय अर्थात् भिचारादि कार्य नहीं करने का आदेश था। इतिहासकार चटर्जी के अनुसार स्त्री के विषय में मनु एवं याज्ञवल्वय का दृष्टिकोण पर्याप्त भिन्न या मनु उसे भावनाहीन मानते थे जबकि याज्ञवत्वय कर्त्तव्य निष्ठ।[10]

स्त्रियों के अधिकार एवं विशेषाधिकार

---

[6] भट्ट जनार्दन, भारतीय संस्कृति, पृ. 61
[7] बाबू छोटे लाल जैन स्मृति ग्रन्थ, 1967, पृ. 92
[8] याज्ञवल्क्य स्मृति,
[9] कुषाण कालीन समाज, 1992, पृ. 164
[10] चटर्जी सम्बन्धी धार्मिक मान्यता

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

निःसन्देह स्त्रियों के कर्त्तव्यों व असमर्थताओं के प्रतिफल–रूप में उन्हें अनेकानेक अधिकार एवं कतिपय विशेषाधिकार भी प्राप्त थे। सर्वप्रथम स्त्रियों का अधिकार एवं कतिपय विशेषाधिकार भी प्राप्त थे। सर्वप्रथम स्त्रियों का अधिकार पति सेवा करना, सदा पति के निकट रहना एवं पति के घर में निवास पाना था। उसे पति के घर में भरण–पोषण का पूर्ण अधिकार था। पुरूषों द्वारा सुरक्षा पाना स्त्रियों का मूल अधिकार था। वह जीवन की किसी भी अवस्था में स्वाधीन न थी। धन सम्पति पर स्त्री के अधिकार के विषय में याज्ञवल्क्य पुत्रहीन पति परायण, पुत्रवती एवं मधुरभाषी पत्नी का त्याग करने पर पति की सम्पति का 1/3 भाग पत्नी हो देते हैं। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को संपति–अधिकार प्राप्त थे।[11] स्त्रियों की हत्या सर्वथा निषिद्ध थी। पती पत्नी के अपराधों का गुरूवत शारीरिक दण्ड दे सकता था। व्यभिचार दोष पर त्यागा जा सकता था परन्तु उन्हें मारा नहीं जा सकता था।

स्त्री सम्बन्धी धार्मिक मान्यता

स्त्रियों का धर्म में अभिन्न–सम्बन्ध था। यज्ञादि धर्म कार्य उनके बिना सम्पन्न नहीं होते थे। वास्तव में बौद्ध व जैन धर्म से प्रभावित हो अधिकांश स्त्रियों ने भिक्षुणी होना स्वीकार किया था।[12] अनेक प्रतिमाओं में स्त्रियों द्वारा धारण किया गया जनेऊ इस बात का संकेत करता है। कि पुरूषों के समान स्त्रियों को धार्मिक अधिकार प्राप्त थे। इसी प्रकार वेदारम्भ और गायत्री जाप आदि में प्राप्त स्वतन्त्रता निश्चित ही उनकी सामाजिक उन्नति की परिचायक है।

भारत स्त्री और शिक्षा

जैसा कि सर्वविदित है वैदिक काल में स्त्री शिक्षा अति उन्नत अवस्था में विद्यमान रही है। स्त्रियां प्रायः लम्बी अवस्था तक अध्ययनरत रहती थी। ईसा पूर्व की शताब्दियों में विदेशी आक्रमण होते रहे। अतएव स्वस्थ वातावरण के अभाव में सुरक्षा की दृष्टि से कन्याओं के विवाह अल्पावस्था में कर देना सर्वोत्तम माना गया। फलस्वरूप उनकी प्रारम्भिक शिक्षा ही हो पाती थी। यही कारण है। इस काल में विदुषी स्त्रियों के कम ही उल्लेख उपलब्ध होते हैं। वास्तव में शिक्षा समाज के अतिसीमित दायरे तक ही व्याप्त थी।[13] महाभारत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नायिका द्रोपदी पण्डिता नाम से विख्यात थी। यह निर्भीकता एवं विद्वता पूर्वक पति से सभी विषयों में तर्क–वितर्क करती थी एवं संकटकालीन अवसरों पर वह अत्यधिक विवेकी सांसारिक स्त्री होती थी। तात्कालीन स्त्रियां शिक्षा के अलावा संगीत, नृत्य एवं चित्रकला आदि की शिक्षा भी ग्रहण करती थी।[14] इसके अलावा उनके द्वारा सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के भी उल्लेख मिलते हैं। जो उनकी सैनिकी–रूचि की पृष्टि करता है। स्त्रियां प्रायः शासन में भी भाग लेते थी। अतः स्पष्ट है कि वह सर्वतोन्मुखी प्रतिभायुक्त थी।

---

[11] याज्ञवल्क्य, 1।105
[12] ला.वी.सी. वोमेन इन बुद्धिस्ट लिटरेचर, पृ. 66
[13] केतकर, एस.वी. हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इण्डिया, पृ. 54
[14] मजूमदार ग्रेट वोमेन ऑफ इण्डिया, पृ. 17

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

स्त्री एवं विवाह

धर्मग्रन्थों से विदित होता है कि स्त्रियों के विवाह अल्पायु में ही करना अपेक्षाकृत श्रेष्ठ माना गया। संभवतः उसका कारण समकालिन राजनैतिक सामाजिक वातावरण या जिससे स्त्रियों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। मनुस्मृति में विहित है कि यदि वर गुणवान मिल जाए तो कन्या का विवाह अल्पावस्था में ही कर देना सर्वोत्तम है।[15] स्त्रियों का पर्दा प्रथा के प्रति क्या दृष्टिकोण या इस पर विभिन्न धर्म–ग्रन्थों द्वारा प्रकाश पड़ता है। द्रौपदी का दर्शन राजाओं ने स्वयंवर के समय ही किया था तदुपरांत जुए में हारने पर चीर हरण के समय।[16] ललित विस्तार में एक वक्तव्य है कि नवविवाहिता अपने ससुराल में वृद्धों के समक्ष पर्दा करती थी। ऐसा वर्णित है कि समाज में यद्यपि पर्दा–प्रथा विद्यमान न रही फिर भी उच्च वर्णों की स्त्रियों जनसाधारण के समक्ष नहीं जाती थी। विशेष अवसरों पर ही उनके दर्शन सुलभ थे।

इतिहासकार जायसवाल के याज्ञवल्वय द्वारा स्त्रीधन पर पुत्रियों के अधिकार पर विशेष बल देने का कारण संभवतः पैतृक संपति पर पुत्र अधिकार के समान ही पुत्रियों को समान अधिकार दिलाना था। अतः स्त्रीधन पर पुत्रियों का अधिकार था। संभवतः यह स्त्रीधन की प्रथा द्रविण मातृ–प्रधान समाज की देन थी। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस युग में स्त्रियों के सम्पति – अधिकार पूर्ण सुरक्षित थे। विधवा–विवाह के संबंध में मनु का मत था कि पति की मृत्युपरान्त यदि चाहे तो स्त्री केवल कन्दमूल फल खाकर अपने शरीर को क्षीण कर दे परन्तु उसे किसी अन्य पुरूष का नाम तक नहीं लेना चाहिए। उसे संयम रखना चाहिए, व्रृत रखने चाहिए, सतीत्व की रक्षा करनी चाहिए और पतिव्रता के सदाचरण एवं गुणों की प्राप्ति की आकांक्षा करनी चाहिए।[17]

वैश्यावृत्ति न केवल भारतीय समाज में प्रत्युत्त संसार के प्रत्येक समाज में प्राचीन–काल से विद्यमान रही है। देवताओं के सन्दर्भ में अप्सराओं के उल्लेख भी इसी वैश्यावृति के बोधक है। अतः कहना गलत न होगा कि अनादिकाल से यह संस्था सजीव रही है। स्मृति शास्त्र एवं महाभारत के प्रसंगों में इसका विशद विवेचन हुआ है।[18] कामसूत्र में 64 कलाओं में प्रारंगत वैश्या को गणिका कहा है।[19] व्यभिचार को प्रायः सभी धर्मग्रन्थों में भर्त्सगीय माना गया। याज्ञवल्कय ने व्यभिचार द्वारा गर्भवती होने अथवा पति को मार डालने अथवा इसी प्रकार के क्षणास्पपद अपराध करने पर पत्नी को त्यागनीय माना है। महाभारत के शांति पर्व में कतिपय भिन्न विचार व्यक्त करते हुए स्त्री के कुमार्गगामी होने का दोष उसके पति को दिया है।[20]

---

[15] मनु., 9, 88
[16] ललित, 12।157
[17] मनु. 9, 132
[18] शर्मा, साधन, कुषाण कालीन समाज, पृ. 171
[19] कामसूत्र, 1। 3। 20
[20] महाभारत, 11 । 267। 38

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

सती प्रथा – सती प्रथा प्राचीन भारत में ही नहीं प्रचलित थी वरन् प्राचीन यूनानियों, जर्मनों, स्लावों आदि जातियों में भी इसके उदाहरण मिलते है। सती होने से तात्पर्य पति को मृत्युपरान्त अग्नि में आत्म समर्पण करता था। यह पत्नी की पति के प्रति असीम निष्ठा का सूचक था। स्त्रियां इस कार्य को सहर्ष करती थी एवं जो सती नहीं होती थी उन्हें समाज में गौरव नहीं मिलता था। विधवाओं के प्रति अपमानजनक व्यवहार किया जाता था। संभवतः इसीलिए विधवा सती हो जाना श्रेयस्कर समझती थी। अतएव सती प्रथा को बल मिला।[21] युद्ध में पति के मृत होने पर शत्रुओं द्वारा बन्दी बनाकर स्त्रियों को दासीवत आचरण हेतु बाध्य किया जाता था। अतः सती हो जाना इससे अच्छा था। मनु ने युद्ध में प्राप्त वस्तुओं में स्त्रियों का वर्णन किया है।

स्त्रियों के प्रति विविध धारणाएँ

समकालीन ग्रन्थों में स्त्रियों के पक्ष एवं विपक्ष में विविध वर्णन उपलब्ध होते हैं। इनमें जहां स्त्रियों को ब्रह्म की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि माना था वहां उन्हें निकृष्टतम शुद्ध के समान भी माना। अनुशासन पर्व में विहित है कि स्त्रियां झूठी है, उनसे अधिक दुष्ट कोई नहीं है, वह उस्तरे की धार की भांति है, विष है, सर्प और अग्नि है, सैंकड़ों–हजारों में शायद कोई एक पतिव्रता स्त्री होगी।[22] चटर्जी का मत है कि तत्कालीन धर्मों में स्त्रियों को अधिकाधिक स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी थी। इसका परिणाम स्वरूप परिवार एवं उनकी सुरक्षा हेतु पुरूषों को सजग किया गया था।[23]

कुषाण युग के शिल्प और पुरातत्व के दोहन से यह स्पष्ट होता है कि समाज में स्त्रियों का स्थान महत्त्वपूर्ण या ब्राह्मण, बौद्ध व जैन स्त्रियों की मूर्तियों के निर्माण में भी स्त्रियों ने योगदान दिया। एक शिलालेख में जैन तीर्थंकर के स्थान पर देवी आर्यावती को प्रधानता दी है। विद्वानों का अनुमान है कि यह वर्धमान की मां त्रिशला थी जिन्हें आर्यावती नाम से शिलालेख में स्मरण किया गया है। जैन एवं बौद्ध मूर्तियों से श्रावकों के साथ श्राविकाएं, उपासकों के साथ उपासिका पर्याप्त संख्या में अंकित मिलती है। महिला सौदर्य को एक विशिष्ट दृष्टि से अंकित करना कुषाण युग के मथुरा शिल्पी की विशेषता थी यद्यपि कला में स्त्रियों का अंकन मथुरा से पूर्व सांची व भरहुत में भी हुआ पर वहां उनका स्थान देविका व उपासिका का है।

निष्कर्ष

वस्तुतः स्त्रियों की दशा सामाजिक विकास का मापदण्ड है। उन्नत व आदर्श समाज वही है जिसमें स्त्रियों को भी पुरूषों के समान अधिकार व उन्नति के समान अवसर प्राप्त होते हैं। भारतीय समाज को सदैव स्त्रियों से उच्च आदर्शों की आशा रही है। अतएव स्त्रियों की प्रशंसा में धर्मग्रन्थकारों ने कोई कसर न छोड़ी। कुषाणकालीन ब्राह्मण, बौद्ध, जैन साहित्य में स्त्रियों की उन्नति के पक्ष एवं विपक्ष में पर्याप्त विवरण उपलब्ध है परन्तु यदि तत्कालीन पुरातात्विक सामग्री पर दृष्टि डाली जाए

[21] अल्टेकर पोजीशन ऑफ वोमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन्स, पृ. 163
[22] महाभारत, 13।19। 6, 13।38।12, 13।19।93
[23] चटर्जी बी. कुषाण स्टेट एण्ड इण्डिया सोसाइटी, पृ. 193

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि स्त्रियों की दशा पर्याप्त सन्तोषजनक थी। मुद्राओं एवं मूर्तियों में मातृ देवी की पूजा का चित्रण स्त्रियों के सम्मान का सूचक है। दूसरी ओर मुख–भंगिमा द्वारा सांसारिक विषयों से पूर्ण सन्तुष्टि की पुष्टि होती है।

भारतीय संस्कृति में स्त्रियों को उच्च स्थान दिया गया है। स्त्री–पुरूष का आधा अंग मानी गई है, इसीलिए 'अर्द्धांगिनी' कहलाती थी। स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त थे। कोई धार्मिक कार्य स्त्री के बिना पूरा नहीं होता था। इसीलिए वह धर्म पत्नी कहलाती थी। नारी के बिना घर का अस्तित्व ही न समझा जाता था। इसलिए कहा गया है –'गृहिणी गृहमुच्यत' अर्थात् वास्तव में नारी ही घर है। संसार में जितनी उत्तम से उत्तम विभूतियां है उनको भारतीय संस्कृति में स्त्री का रूप दिया है। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों को हमेशा सम्मान दिया है।